International Research Journal of Humanities, Language and Literature ISSN: (2394-1642)
Impact Factor 5.401 Volume 4, Issue 12, December 2017
Website-www.aarf.asia, Email : editor@aarf.asia , editoraarf@gmail.com

जूठन : जातिवाद और सामाजिक अन्याय का दस्तावेज

डॉ. मनिन्द्र जीत कौर
व्याख्याता (हिन्दी विभाग)
राजकीय महाविद्यालय, सूरतगढ़ (राज.)

सारांश

ओम प्रकाश वाल्मीकि की आत्मकथा "जूठन" भारतीय समाज में व्याप्त जातिगत दमन, सामाजिक विषमता और संरचनात्मक अन्याय का एक सशक्त दस्तावेज़ है। यह आत्मकथा दलित जीवन की पीड़ा, अपमान, संघर्ष और प्रतिरोध की गहन अनुभूति कराती है। जूठन न केवल लेखक के व्यक्तिगत अनुभवों का वर्णन है, बल्कि पूरे दलित समुदाय के ऐतिहासिक व सामाजिक उत्पीड़न का प्रतिनिधि आख्यान है। इसमें वर्णित घटनाएँ बताती हैं कि किस प्रकार जाति–आधारित भेदभाव भारतीय समाज के सामाजिक, आर्थिक और सांस्कृतिक ढाँचे में गहरे रूप में निहित है। शिक्षा, श्रम, सामाजिक रिश्ते, सांस्कृतिक व्यवहार और जीवन के मूल अधिकारों पर प्रभुत्वशाली जातियों का नियंत्रण इस ग्रंथ की केंद्रीय चिंता है। यह शोधपत्र जूठन में निहित जातिवाद, सामाजिक अन्याय, बहिष्करण, प्रतिरोध और सामाजिक चेतना के विभिन्न आयामों का अध्ययन करता है। अध्ययन से यह स्पष्ट होता है कि जूठन केवल आत्मकथा नहीं, बल्कि दलित अस्मिता, गरिमा और समानता की सतत लड़ाई का जीवंत दस्तावेज़ है, जो आज भी सामाजिक न्याय के विमर्श को प्रासंगिक बनाता है।

मुख्य शब्द : जूठन, ओम प्रकाश वाल्मीकि, जातिवाद, सामाजिक अन्याय, दलित आत्मकथा, सामाजिक बहिष्करण, उत्पीड़न, प्रतिरोध, दलित चेतना, सामाजिक न्याय

प्रस्तावना

भारतीय समाज का सामाजिक ढाँचा जाति–आधारित विभाजन पर निर्मित रहा है, जिसका प्रभाव आज भी जीवन के विविध क्षेत्रों में स्पष्ट रूप से दिखाई देता है। जाति–प्रथा केवल एक सामाजिक व्यवस्था नहीं, बल्कि एक गहरे पैठे हुए सांस्कृतिक और मानसिक ढाँचे का प्रतिबिंब है, जिसने सदियों तक दलित समुदाय को अस्पृश्यता, शोषण और सामाजिक बहिष्कार की पीड़ा में धकेला। साहित्य, विशेषतः आत्मकथाएँ, इस सामाजिक संरचना को

© Associated Asia Research Foundation (AARF)
A Monthly Double-Blind Peer Reviewed Refereed Open Access International e-Journal - Included in the International Serial Directories.

समझने की सबसे सशक्त विधाओं में से एक हैं, क्योंकि वे उन अनुभूत सत्यों को सामने लाती हैं जिन्हें अक्सर मुख्यधारा समाज अनदेखा करता है या दबा देता है। इसी क्रम में ओम प्रकाश वाल्मीकि की आत्मकथा "जूठन" केवल एक व्यक्तिगत जीवनकथा नहीं, बल्कि दलित जीवन के संघर्ष, अपमान, दमन, और प्रतिरोध की व्यापक सामाजिक वास्तविकताओं का प्रामाणिक दस्तावेज़ है। लेखक स्वयं उन परिस्थितियों से गुज़रे हैं जहाँ जातिगत भेदभाव केवल सामाजिक व्यवहार में नहीं, बल्कि श्रम, शिक्षा, संसाधनों की उपलब्धता, धार्मिक–सांस्कृतिक गतिविधियों और रोज़मर्रा के मानवीय अधिकारों तक में व्याप्त रहा। जूठन इन कठोर अनुभवों को न केवल दर्ज करता है, बल्कि यह भी दर्शाता है कि कैसे दलित समुदाय परंपरागत सत्ता संरचनाओं, सामंती मानसिकता और सामाजिक संस्थाओं में निहित जातिवादी दृष्टिकोण के कारण लगातार हाशिये पर धकेला जाता रहा।

यह आत्मकथा सामाजिक न्याय के विमर्श में महत्वपूर्ण है क्योंकि यह व्यक्तिगत पीड़ा को सामूहिक अनुभव के रूप में प्रस्तुत करती है और दिखाती है कि जातिगत उत्पीड़न केवल एक व्यक्ति की समस्या नहीं, बल्कि एक पूरे समुदाय को प्रभावित करने वाला संस्थागत अन्याय है। जूठन हिंदी साहित्य में दलित चेतना का वह प्रस्थान–बिंदु है जिसने समाज को यह सोचने पर मजबूर किया कि शिक्षा, गरिमा और समानता का अधिकार किसी भी मनुष्य का मूलभूत अधिकार है, जिसे छीनने का अधिकार किसी सामाजिक व्यवस्था को नहीं है। इसके साथ ही, वाल्मीकि का वर्णनात्मक शैली, भाषा की सादगी और अनुभवों की तीव्रता पाठक को प्रत्यक्ष रूप से उस दर्द, अपमान और संघर्ष से परिचित कराती है जो दलित जीवन की कठोर वास्तविकता है। इस शोधपत्र का उद्देश्य जूठन का समाजशास्त्रीय विश्लेषण करते हुए यह समझना है कि जातिवाद किस प्रकार सामाजिक अन्याय को जन्म देता है, कैसे यह संरचनात्मक रूप में समाज के विभिन्न स्तरों में व्याप्त है, और कैसे लेखक ने अपने अनुभवों के माध्यम से प्रतिरोध, अस्मिता और समानता की लड़ाई को स्वर दिया है।

'जूठन' : एक संक्षिप्त परिचय

ओम प्रकाश वाल्मीकि की आत्मकथा "जूठन" हिंदी दलित साहित्य की एक मील का पत्थर मानी जाने वाली रचना है। यह पुस्तक लेखक के जीवन के उन कठोर और अपमानजनक अनुभवों को उजागर करती है जो जातिगत भेदभाव के कारण उन्हें बचपन से ही झेलने पड़े। जूठन केवल व्यक्तिगत घटनाओं का विवरण नहीं है, बल्कि दलित समुदाय की ऐतिहासिक पीड़ा, सामाजिक बहिष्कार, श्रम के शोषण और सम्मान के संघर्ष को सामने लाने वाला एक सशक्त दस्तावेज़ है। इस आत्मकथा में वाल्मीकि ने बताया है कि किस प्रकार उच्च जातियों का वर्चस्व सामाजिक संबंधों, शिक्षा व्यवस्था, श्रम विभाजन और सांस्कृतिक व्यवहार के हर स्तर पर स्पष्ट रूप से दिखता है।

"जूठन" शीर्षक स्वयं उस अपमानजनक स्थिति का प्रतीक है, जिसमें दलित समुदाय को ऊँची जातियों के घरों से बचा–खुचा खाना (जूठन) इकट्ठा करने पर मजबूर किया जाता था। यह शीर्षक भारतीय सामाजिक संरचना की क्रूर सच्चाई को प्रत्यक्ष रूप में प्रस्तुत करता है। पुस्तक समाज को यह सोचने पर मजबूर करती है कि बराबरी, गरिमा और सम्मान का अधिकार हर व्यक्ति का है, और जाति के आधार पर किसी को भी अपमानित या हाशिये पर नहीं रखा जा सकता।

इस तरह जूठन दलित अस्मिता, संघर्ष और सामाजिक न्याय की लड़ाई का एक जीवंत साहित्यिक प्रमाण है, जिसने भारतीय साहित्य और समाज दोनों में गहरी छाप छोड़ी है।

जातिवाद : अवधारणा और समाजशास्त्रीय आधार

भारतीय समाज में जाति–प्रथा एक प्राचीन सामाजिक व्यवस्था है, जिसकी जड़ें धर्म, परंपरा और सामाजिक संरचनाओं में गहराई से समाई हुई हैं। जातिवाद का मूल आधार जन्म आधारित सामाजिक विभाजन है, जिसमें समाज को विभिन्न ऊँची और नीची जातियों में बाँटकर सामाजिक, आर्थिक और सांस्कृतिक अधिकारों का असमान वितरण किया जाता रहा है। यह व्यवस्था लोगों के पेशे, सामाजिक स्थान, संसाधनों तक पहुँच, सामाजिक संबंधों और सांस्कृतिक आयोजनों में उनकी सहभागिता को निर्धारित करती आई है। समाजशास्त्रीय दृष्टि से जातिवाद केवल व्यक्तिगत पूर्वाग्रह नहीं, बल्कि एक संस्थागत संरचना है, जो सामाजिक व्यवहार, शिक्षा व्यवस्था, राजनीतिक शक्ति–संबंधों और आर्थिक संसाधनों के उपयोग तक में अपनी पकड़ बनाए रखती है। यही कारण है कि दलित समुदाय सदियों तक सामाजिक बहिष्कार, श्रम के शोषण, अपमानजनक व्यवहार, और अवसरहीनता का शिकार होता रहा।

जातिवाद सामाजिक स्तरीकरण की उस व्यवस्था को जन्म देता है, जिसमें ऊँची जातियों के पास शक्ति, संसाधन और सम्मान केंद्रित रहते हैं, जबकि दलित समूहों को निम्नतम पायदान पर धकेल दिया जाता है। समाजशास्त्री डॉ. बी. आर. अंबेडकर और एम. एन. श्रीनिवास ने इस व्यवस्था को "सामाजिक वर्चस्व" और "सांस्कृतिक प्रभुत्व" का परिणाम बताया है, जिसमें ऊँची जातियों द्वारा निर्मित मानदंडों को ही समाज का 'सही' और 'श्रेष्ठ' माना जाता है। इसी ढाँचे के भीतर सांस्कृतिक हिंसा और धार्मिक वैधता के माध्यम से जातिगत भेदभाव को पीढ़ी–दर–पीढ़ी पुनर्प्रतिष्ठित किया जाता रहा। अस्पृश्यता, अलग बस्तियों में रहना, शारीरिक श्रम का बोझ, धार्मिक स्थलों पर प्रवेश–निषेध, और सामाजिक संपर्कों में दूरी, जातिवाद की ऐसी ही संरचनात्मक अभिव्यक्तियाँ हैं।

इसके अतिरिक्त, जातिवाद मानसिकता और दृष्टिकोण को भी प्रभावित करता है। जन्म से 'निम्न' घोषित व्यक्ति हीनभावना, अपमान, और समाज से अलगाव का अनुभव करता है, जबकि 'उच्च' घोषित व्यक्ति में श्रेष्ठता और अधिकार का भाव विकसित हो जाता

है। यह मानसिक दूरी सामाजिक असमानता को और गहरा करती है। इस प्रकार जातिवाद केवल सामाजिक व्यवहार की समस्या नहीं, बल्कि एक व्यापक सामाजिक–सांस्कृतिक संस्था है जो अवसरों की समानता, सामाजिक न्याय और लोकतांत्रिक मूल्यों के मार्ग में सबसे बड़ी बाधा के रूप में उपस्थित होती है।

जूठन में जातिगत उत्पीड़न का चित्रण

ओम प्रकाश वाल्मीकि की आत्मकथा "जूठन" दलित जीवन में व्याप्त जातिगत उत्पीड़न का अत्यंत मार्मिक और यथार्थपूर्ण चित्रण प्रस्तुत करती है। इस रचना में लेखक ने बचपन से लेकर युवावस्था तक के उन कठोर अनुभवों को दर्ज किया है, जो समाज में गहराई से फैले जातिवाद, ऊँच–नीच की भावना और सामाजिक बहिष्कार को उजागर करते हैं। जूठन की सबसे भयावह सच्चाई यह है कि दलित समुदाय का अपमान केवल सामाजिक व्यवहार तक सीमित नहीं था, बल्कि वह जीवन के हर आयाम–शिक्षा, श्रम, संसाधनों तक पहुँच, सामाजिक संबंध, और सांस्कृतिक गतिविधियों में गहराई तक समाया हुआ था। उच्च जातियों द्वारा दलितों को दिए गए बचा–खुचे भोजन (जूठन) को अपनाना ही नहीं, बल्कि उसके लिए संघर्ष करना दलित जीवन की मजबूरी और सामाजिक दमन की अत्यंत क्रूर तस्वीर पेश करता है।

विद्यालय में वाल्मीकि को झाड़ू लगाने और स्कूल परिसर की सफाई करने जैसे 'जातिगत श्रम' का दबाव झेलना पड़ा–जो यह दर्शाता है कि शिक्षा जैसी समान अधिकार वाली संस्था भी जातिवाद से मुक्त नहीं थी। शिक्षक स्वयं जातिगत पूर्वाग्रह से ग्रस्त थे, जिससे दलित विद्यार्थियों के लिए सीखना और आत्मसम्मान बनाए रखना दोनों चुनौतीपूर्ण हो जाता था। यह अनुभव न केवल व्यक्तिगत अपमान था, बल्कि उस संस्थागत जातिवाद का प्रमाण भी था जो दलितों के शिक्षा–प्रवेश और प्रगति में बड़ी बाधा बना रहा।

गाँव के सामाजिक जीवन में भी वाल्मीकि परिवार को निरंतर अपमान का सामना करना पड़ता था। उन्हें धार्मिक और सामाजिक आयोजनों में बराबरी का दर्जा नहीं मिलता था, पानी के स्रोतों से लेकर बैठने की जगह तक हर स्तर पर उन्हें निम्न माना जाता था। उच्च जातियों द्वारा श्रम का शोषण और उसके बदले में अपमानजनक व्यवहार, दलितों के लिए दोहरी यातना बन जाता था–एक ओर उनका श्रम अनिवार्य था, दूसरी ओर उन्हें उसी श्रम के बदले में सम्मान नहीं, बल्कि अपमान मिलता था।

जूठन में वर्णित घटनाएँ यह भी दिखाती हैं कि आर्थिक स्थिति सुधरने के बाद भी दलितों के लिए सामाजिक स्थिति बदलना आसान नहीं होता। जाति व्यक्ति को बाँधने वाली वह सामाजिक जंजीर है, जो उसकी पहचान, अवसर और संबंधों को नियंत्रित करती है। वाल्मीकि का संघर्ष इस बात का प्रतीक है कि दलित जीवन में सम्मान और बराबरी की

लड़ाई केवल व्यक्तिगत प्रयास से नहीं, बल्कि सामाजिक और संरचनात्मक परिवर्तन से ही संभव है।

इस प्रकार "जूठन" में जातिगत उत्पीड़न का चित्रण केवल पीड़ा का वर्णन नहीं, बल्कि उस सामाजिक व्यवस्था पर तीखा प्रहार है जो जन्म के आधार पर मनुष्य को अधिकारहीन बना देती है। यह आत्मकथा दर्शाती है कि जातिवाद एक व्यापक सामाजिक अन्याय है, जिसे समझने और समाप्त करने के लिए संवेदनशीलता, चेतना और सामूहिक संघर्ष की आवश्यकता है।

सामाजिक अन्याय और असमानता के आयाम

भारतीय समाज में सामाजिक अन्याय और असमानता जाति–प्रथा से गहराई से जुड़ा हुआ एक संरचनात्मक सत्य है, जिसका वास्तविक स्वरूप "जूठन" जैसी आत्मकथाओं में स्पष्ट रूप से उभरकर आता है। सामाजिक अन्याय की जड़ें केवल व्यक्तिगत व्यवहार में नहीं, बल्कि उस सामाजिक व्यवस्था में निहित हैं जो संसाधनों, अवसरों और सम्मान को जन्म–आधारित श्रेणियों में बाँट देती है। दलित समुदाय के लिए यह अन्याय दैनिक जीवन का हिस्सा बन जाता है– जहाँ आर्थिक, सामाजिक, शैक्षिक और सांस्कृतिक स्तर पर उनके साथ भेदभाव किया जाता है और उनके अधिकारों को सीमित किया जाता है। उच्च जातियों के पास सदियों से संचित सत्ता, भूमि और सामाजिक प्रतिष्ठा का नियंत्रण रहता है, जबकि दलित समूह अपने श्रम, पहचान और गरिमा की निरंतर लड़ाई लड़ते रहते हैं।

जूठन में ये असमानताएँ अत्यंत स्पष्ट रूप में दिखाई देती हैं। सामाजिक बहिष्कार के कई रूपों–अलग बस्तियाँ, सार्वजनिक स्थलों पर प्रतिबंध, भोजन और पानी के स्रोतों पर नियंत्रण, तथा धार्मिक–सांस्कृतिक आयोजनों में भेदभाव के माध्यम से समाज दलितों को 'अन्य' के रूप में स्थापित करता है। यह अन्यता सामाजिक अन्याय का मूल स्वरूप है, जिसमें दलितों को मानव होने के समान अधिकार नहीं दिए जाते। यही असमानता शिक्षा और रोजगार के अवसरों में भी दिखाई देती है–जहाँ दलित छात्रों को अपमानित किया जाता है, उन्हें जातिगत कार्यों में धकेला जाता है, और उच्च शिक्षा तक पहुँच कठिन बना दी जाती है।

आर्थिक असमानता भी सामाजिक अन्याय का एक प्रमुख आयाम है। दलित समुदाय प्रायः श्रम–प्रधान, निम्न वेतन और अपमानित कार्यों में लगा रहता है, जबकि इसके बदले में उन्हें उचित मजदूरी, सम्मान या सुरक्षा नहीं मिलती। यह आर्थिक शोषण सामाजिक असमानता को और गहरा करता है, क्योंकि आर्थिक संसाधनों के अभाव में दलित समुदाय शिक्षा, स्वास्थ्य और आवास जैसी मूलभूत आवश्यकताओं से भी वंचित रह जाता है। इसी प्रकार सांस्कृतिक असमानता–जहाँ उच्च जातियाँ अपनी संस्कृति को श्रेष्ठ और दलित संस्कृति को निम्न ठहराती हैं– सामाजिक न्याय के सिद्धांतों को और कमजोर करती है।

इन असमानताओं का मनोवैज्ञानिक प्रभाव भी अत्यंत गंभीर है। निरंतर अपमान, बहिष्कार और निम्नता का अनुभव दलित समुदाय में हीनभावना, मानसिक तनाव और असुरक्षा की भावना पैदा करता है। वहीं दूसरी ओर, उच्च जातियों में श्रेष्ठता का भाव और वर्चस्ववादी मानसिकता विकसित होती है, जो सामाजिक अन्याय को लगातार पुनर्प्रतिष्ठित करती रहती है।

अतः सामाजिक अन्याय और असमानता केवल एक सामाजिक विकृति नहीं, बल्कि एक ऐसी संस्थात्मक समस्या है, जिसके परिणाम पीढ़ियों तक महसूस किए जाते हैं। "जूठन" इन आयामों को बेहद संवेदनशीलता और प्रखरता के साथ उजागर करती है, जिससे यह स्पष्ट होता है कि न्याय और समानता की स्थापना के लिए सामाजिक संरचनाओं में गहरा और व्यापक परिवर्तन आवश्यक है।

प्रतिरोध, संघर्ष और दलित अस्मिता

ओम प्रकाश वाल्मीकि की "जूठन" केवल जातिगत उत्पीड़न और सामाजिक अन्याय का दस्तावेज़ भर नहीं है, बल्कि यह प्रतिरोध, संघर्ष और दलित अस्मिता की निरंतर यात्रा का सशक्त पाठ भी है। इस आत्मकथा में लेखक ने दिखाया है कि दलित जीवन भले ही अपमान, कठिनाइयों और बहिष्कार से घिरा हो, लेकिन इसके भीतर एक गहन इच्छाशक्ति, परिवर्तन की आकांक्षा और आत्मसम्मान की ज्वाला सदैव धधकती रहती है। प्रतिरोध का पहला रूप लेखक के भीतर तब आकार लेता है जब वे जातिप्रथा द्वारा थोपे गए "निम्न" कार्यों को चुनौतियों के साथ ठुकराते हैं और शिक्षा को अपने संघर्ष का प्रमुख हथियार बनाते हैं। स्कूल में झाड़ू लगाने, अपमानित होने और जातिगत तानों के बावजूद वाल्मीकि हार नहीं मानते—यह उनके व्यक्तिगत प्रतिरोध का प्रारंभिक रूप है, जो धीरे—धीरे सामूहिक चेतना का आधार बनता है।

"जूठन" में प्रतिरोध शिक्षा, आत्मसम्मान और जागरूकता के माध्यम से उभरता है। लेखक यह समझते हैं कि परिवर्तन केवल भौतिक साधनों से नहीं, बल्कि मानसिक और बौद्धिक शक्ति से संभव है। इसलिए वे कठिन परिस्थितियों के बावजूद विद्यालय और उच्च शिक्षा की ओर अग्रसर होते हैं, और अपने ज्ञान तथा लेखन को समाज में व्याप्त अन्याय के विरुद्ध संघर्ष का माध्यम बनाते हैं। यह संघर्ष केवल व्यक्तिगत नहीं है, बल्कि दलित समुदाय की सामूहिक पीड़ा को आवाज़ देने वाला आंदोलन बन जाता है। लेखक के शब्दों, अनुभवों और पीड़ाओं में पूरे समुदाय की अस्मिता, अपेक्षाएँ और सम्मान की लड़ाई प्रतिबिंबित होती है।

दलित अस्मिता, जिसे इस आत्मकथा में बार—बार रेखांकित किया गया है, अपने अस्तित्व की पुनर्परिभाषा का प्रयास है। यह अस्मिता "निम्न" कहे जाने की धारणा को नकारती है और आत्मसम्मान की स्थापना करती है। आत्मकथा के माध्यम से वाल्मीकि यह

स्पष्ट करते हैं कि दलित होना कोई कमी नहीं, बल्कि एक सामाजिक पहचान है, जिसे सम्मान, अधिकार और समानता के साथ स्वीकार किया जाना चाहिए। लेखक अपने अनुभवों को मुखर करके उन सदियों पुराने मौन को तोड़ते हैं जिसे समाज ने दलित समुदाय पर थोप रखा था। यही मौन–भंग प्रतिरोध का सबसे बड़ा रूप है।

इसके साथ ही, "जूठन" में प्रतिरोध का एक व्यापक सामाजिक स्वरूप भी दिखाई देता है–जहाँ लेखक केवल व्यक्तिगत अपमान से लड़ते ही नहीं, बल्कि समाज के उन ढाँचों पर प्रश्न उठाते हैं जो जाति के आधार पर मनुष्य को विभाजित और अपमानित करते हैं। उनकी लेखनी और जीवन दोनों उस दलित चेतना के निर्माण में योगदान देते हैं, जिसने साहित्य, समाज और आंदोलन–तीनों स्तरों पर समानता के संघर्ष को नई दिशा प्रदान की। इस तरह "जूठन" प्रतिरोध के माध्यम से दलित अस्मिता की पुनर्स्थापना और सामाजिक न्याय की ओर बढ़ने का एक मील का पत्थर बन जाती है।

समकालीन संदर्भ में जूठन की प्रासंगिकता

ओम प्रकाश वाल्मीकि की आत्मकथा "जूठन" जिस सामाजिक यथार्थ को उजागर करती है, वह केवल अतीत की समस्या नहीं है; आज के भारत में भी जातिगत भेदभाव और सामाजिक असमानता गहरे और सूक्ष्म रूपों में मौजूद हैं। आधुनिकता, शिक्षा, विज्ञान और संवैधानिक समानता के दावों के बावजूद जाति अभी भी समाज के विभिन्न स्तरों–शिक्षा, रोजगार, विवाह, स्थानिक विभाजन, धार्मिक–सांस्कृतिक प्रथाओं और राजनीतिक व्यवहार–में एक निर्णायक कारक बनी हुई है। इसी वजह से "जूठन" का महत्व समय के साथ और भी बढ़ गया है। यह आत्मकथा हमें याद दिलाती है कि दलित समुदाय का संघर्ष केवल ऐतिहासिक अन्याय के विरुद्ध ही नहीं, बल्कि आज के समाज में मौजूद नई–नई असमानताओं और प्रतीकात्मक हिंसा के खिलाफ भी जारी है।

समकालीन समाज में जातिगत भेदभाव भले ही प्रत्यक्ष रूप में कम दिखे, लेकिन वह अब अधिक छिपे हुए, सांकेतिक और संस्थागत रूपों में प्रकट होता है। शिक्षा संस्थानों में भेदभाव, कार्यस्थलों पर असमान अवसर, सामाजिक मीडिया में जातिसूचक टिप्पणियाँ, सांस्कृतिक क्षेत्रों में प्रतिनिधित्व की कमी, और विवाह तथा सामाजिक संबंधों में जाति का निरंतर प्रभाव–ये सब आज के समय के सूक्ष्म जातिवाद को रेखांकित करते हैं। ऐसे समय में "जूठन" जैसी आत्मकथाएँ साहित्यिक चेतना का कार्य करने के साथ–साथ सामाजिक जागरूकता का भी माध्यम बनती हैं।

इसके अतिरिक्त, समकालीन दलित आंदोलनों, सामाजिक न्याय की नीतियों, आरक्षण व्यवस्था की बहसों और मानवाधिकार आंदोलनों में "जूठन" एक महत्वपूर्ण संदर्भ बिंदु के रूप में उभरकर आती है। यह रचना हमें इस बात का एहसास कराती है कि संवैधानिक प्रावधानों के बावजूद सामाजिक परिवर्तन तभी संभव है जब मानसिकता और सामाजिक

संरचनाओं में गहरे परिवर्तन हों। समानता केवल क़ानून में होने से नहीं, बल्कि व्यवहार, चेतना और समाज की दृष्टि में होने से स्थापित होती है।

आज के समय में, जब जाति के प्रश्न आधुनिक मुद्दों—जैसे शिक्षा में असमानता, आर्थिक बहिष्करण, डिजिटल पहुँच की कमी, और सामाजिक—राजनीतिक प्रतिनिधित्व—से गहराई से जुड़ रहे हैं, तब "जूठन" इन समस्याओं को समझने और उनके समाधान की दिशा में सोचने के लिए एक मजबूत वैचारिक आधार प्रदान करती है। यह आत्मकथा आज भी नए पाठकों को प्रेरित करती है, शोधकर्ताओं के लिए चिंतन का आधार बनती है, और समाज को यह याद दिलाती है कि सामाजिक न्याय की यात्रा एक निरंतर प्रक्रिया है, जिसे आगे बढ़ाने की ज़िम्मेदारी हर पीढ़ी की है।

इस प्रकार "जूठन" की प्रासंगिकता आज भी उतनी ही मजबूत है, क्योंकि यह जाति—आधारित अन्याय के खिलाफ संघर्ष की जीवंत चेतना को जगाए रखती है और समाज को अधिक संवेदनशील तथा समानतामूलक दिशा में सोचने के लिए प्रेरित करती है।

निष्कर्ष

ओम प्रकाश वाल्मीकि की "जूठन" भारतीय समाज में जातिगत विभाजन, सामाजिक बहिष्कार और संरचनात्मक अन्याय की गहरी वास्तविकताओं को उजागर करने वाली एक अत्यंत महत्वपूर्ण आत्मकथा है। यह रचना न केवल व्यक्तिगत स्मृतियों का संग्रह है, बल्कि एक पूरे दलित समुदाय के ऐतिहासिक दर्द, संघर्ष और प्रतिरोध का सशक्त सामाजिक दस्तावेज़ है। जूठन यह स्पष्ट करती है कि जातिवाद कोई बीता हुआ अध्याय नहीं, बल्कि आज भी शिक्षा, श्रम, सामाजिक संबंधों और सांस्कृतिक व्यवहार में प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष रूप से कार्य कर रही एक निर्मम सामाजिक संस्था है। लेखक द्वारा वर्णित अनुभव बताते हैं कि सामाजिक समानता केवल कानूनी प्रावधानों से नहीं, बल्कि सामाजिक मानसिकता और व्यवहार में परिवर्तन से संभव है।

इस आत्मकथा में उभरता प्रतिरोध और दलित अस्मिता का स्वर यह दर्शाता है कि दलित समुदाय ने अपने ऊपर थोपे गए अमानवीय बंधनों को केवल सहन नहीं किया, बल्कि उनके खिलाफ एक संगठित और बौद्धिक संघर्ष भी खड़ा किया। शिक्षा, आत्मचेतना, और लेखन को लेखक ने मुक्ति और गरिमा प्राप्ति के केंद्र में रखा है, जिससे यह सिद्ध होता है कि ज्ञान सामाजिक परिवर्तन का सबसे प्रभावी साधन है। जूठन इस बात को भी रेखांकित करती है कि दलित जीवन की वास्तविकता को समझे बिना भारतीय समाज की संपूर्णता, लोकतंत्र और सामाजिक न्याय की अवधारणा को सही रूप में नहीं समझा जा सकता।

समकालीन दौर में जब जाति के प्रश्न आधुनिक असमानताओं—जैसे शिक्षा में पहुँच, प्रतिनिधित्व, आर्थिक अवसरों और डिजिटल विभाजन—से जुड़ रहे हैं, तब "जूठन" जैसी आत्मकथाएँ हमें यह सोचने पर मजबूर करती हैं कि सामाजिक न्याय की लड़ाई अभी समाप्त

नहीं हुई है। यह रचना स्मरण कराती है कि सामाजिक परिवर्तन निरंतर प्रयास, संवेदनशीलता और सामूहिक चेतना की मांग करता है। इसलिए, जूठन केवल दलित साहित्य की धरोहर नहीं, बल्कि सामाजिक बदलाव की राह में मार्गदर्शक एक जीवंत साक्ष्य है। यह समाज को आत्मविश्लेषण करने और हर व्यक्ति को समान सम्मान व अधिकार मिलने की दिशा में आगे बढ़ने की प्रेरणा प्रदान करती है।

संदर्भ

1. वाल्मीकि, ओमप्रकाश। जूठन। नई दिल्ली : राजकमल प्रकाशन, 1997।
2. अंबेडकर, भीमराव रामजी। जाति का उन्मूलन। नई दिल्ली : नेशनल पब्लिशिंग हाउस, 2012
3. ओमवेद्त, गेल। दलित और लोकतांत्रिक क्रांति। नई दिल्ली : सेज पब्लिकेशन, 2008।
4. कुमार, राज। हिंदी दलित आत्मकथाएँ : एक अध्ययन। दिल्ली : ओरिएंट ब्लैकस्वान, 2010।
5. इलैया, कांचा। मैं हिंदू क्यों नहीं? कोलकाता : सम्यक प्रकाशन, 2009।
6. रावत, रामनारायण एस। अस्पृश्यतारू इतिहास और राजनीति। वाराणसी : परमानेंट ब्लैक, 2011।
7. सिंह, के. एस. अनुसूचित जातियाँरू एक सामाजिक–सांस्कृतिक अध्ययन। नई दिल्ली : मानवशास्त्रीय सर्वेक्षण, 1993।
8. गुरु, गोपाल। "दलित संस्कृति और अस्मिता।" सांस्कृतिक अध्ययन पत्रिका, खंड 14, संख्या 3–4, 2000, पृ. 531–554।
9. पाइक, शैलजा। आधुनिक भारत में दलित महिलाओं की शिक्षारू द्विगुणित भेदभाव। नई दिल्ली : रूटलेज, 2014।
10. दास, वैद्यनाथ। हिंदी दलित साहित्यरू स्वर और सरोकार। दिल्ली : लोकभारती प्रकाशन, 2014।